International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 82-84

'तमस' की प्रासंगिकता

डॉ. संतोष कौल काक

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बी. एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुम्बई, महाराष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

यशपाल ने 'झूठा स', असगर वजाहत ने 'जिस लाहौर नहीं देख्याँ', अमृता प्रीतम ने 'पिंजर', खुशवंत सिंह ने 'ट्रेन टु पकिस्तान' में, कल तक अच्छे पड़ोसियों की तरह रह रहे लोगों को साम्प्रदायिकता की छाया पड़ते ही आपसी भाईचारा भूलकर, धार्मिक उन्माद व दहशत से भर उठते, परस्पर अपरिचितों - सा होते बखूबी दिखाया है। इस भीड़ में इन सभी को कुछ भले लोग भी नज़र आते हैं जो सद्भाव व विवेक की खातिर अपनी जान खतरे में डालकर अपना फ़र्ज़ अदा करने, भाईचारा निभाने की कोशिश करते हैं। इन सभी रचनाकारों ने इसकी भयावहता को व्यक्तिगत जीवन में अनुभव किया था और अपने देखे – भोगे यथार्थ ने इन्हें समझाया कि साम्प्रदायिकता का अंधड़, भयानक विध्वंसकारी सैलाब उनको दबाने – डुबोने की पूरी कोशिश करता है। परिणाम है – आम आदमी की बर्बादी। चाहे फिर वह आम आदमी हिन्दू हो या मुसलमान। साम्प्रदायिकता के विरोध में निरंतर सक्रिय ऐसा ही एक और साहित्यिक नाम है भीष्म साहनी का विभाजन के इतिहास सम्बन्धी अपनी स्मृतियों के आधार पर उन्होंने सन १९७३ में 'तमस' उपन्यास की रचना की, और उसके लिए उन्होंने केवल उन स्मृतियों का चयन किया जो विभाजन की विभीषिका और साम्प्रदायिकता की त्रासदी को हमारे समक्ष उपस्थित करने में सक्षम थीं। विभाजन क्यों हुआ ? – यह बताने की बजाय इसकी कारणभूत घटनाओं के पीछे के षड्यंत्रों को साफ़ – साफ़, परत-दर-परत उधेड़कर दर्शाया। कोई निष्कर्ष नहीं दिया, केवल इशारा किया कि प्रतिक्रिया ही प्रतिक्रिया को जन्म देती है। 'भौगोलिक स्पेस में जातीय पाठ' लेख में चमनलालजी ने कहा है कि, "यह उपन्यास हमारे इतिहास की उस मूलग्रंथि को खोलने में मदद करता है जो विभाजन के क्षेत्रीय - भौगोलिक रूपों को बेहद ठोस होकर भी गहरे में हमारे व्यक्तित्व और हमारी अस्मिता की पहचान तक को बाँटती है।"[1]

आज़ादी के पूर्व से लेकर आज तक के सांप्रदायिक उन्माद, राष्ट्रीयता और मानवीयता की धज्जियाँ किस तरह उड़ाते आये हैं इस पर से यह काल-कथा पर्दा उठाती है। उपन्यास की आरंभिक पंक्तियाँ भयावह कथा का, त्रासदी का पूर्वाभास देती लगती हैं। "आले में रखे दीये ने फिर से झपकी ली। ऊपर, दीवार में छत के पास से दो ईंटें निकली हुई थीं। जब – जब वहाँ से हवा का झोंका आता, दीये की बत्ती झपक जाती और कोठरी की दीवारों पर साए से डोल जाते। थोड़ी देर बाद बत्ती अपने - आप सीधी हो जाती और उसमें से उठनेवाली धुएँ की लकीर आले को चाटती हुई फिर से ऊपर की ओर सीधे रुख जाने लगती" ।[2] इस तरह उस कोठरी के अँधेरे में झपकती दीये की लौ, अँधेरे में झपकती रौशनी की एक किरण -सी लगती है और वह भयावह अँधेरा जो उस कमरे में पसरा है, वह देश-काल को घेरता एक भयानक बिम्ब ही मानो खड़ा कर दिया गया है लेखक द्वारा। सारा वर्णन मनुष्य-पशु और पशु – मनुष्य के बीच की जंग को वर्णित करता हुआ भविष्य की ओर इशारा करता है। बड़ी जद्दोजहद के बाद मरा सुअर अचानक मस्जिद की सीढ़ियों पर गिराए जाने के बाद मानो पुनर्जीवित हो उठता है. – पूरे प्रतिशोध - भाव से व पशुत्व से मोहल्ले, मंडियों को जलाता, गाँव के गाँव लूटता, बेगुनाहों का क़त्ल करता, अंधाधुंध हत्याएँ करता, बहू- बेटियों की अस्मतें लूटता रहता है। ...आज भी वह बोतल में बंद जिन्न की तरह कहीं भी कभी भी जीवित हो उठता है, किसी भी गाँव - शहर मंडराने लगता है, उसका कहर आज भी जारी है और हम उसका शिकार हो जाते हैं, उसे पहचान नहीं पाते। यह जिन्न है एक बड़ा भारी षड्यंत्र।

पांच रुपये के लालच से ज्यादा मुराद अली जैसे रसूखदार इंसान का भय ही था, जिसके कारण नत्थू ने सुअर मारा। नत्थू ने जो सुअर मारा वह मानवीय सद्भावना की हत्या का प्रतीक ही बन गया मानो। मुराद अली ने रिचर्ड के इशारे पर यह दुहरा खेल खेला। वह अंग्रेज शासन का एजेंट था, उस पर तो कोई असर न हुआ पर ऐसे लोगों के इशारे पर काम करनेवाला नत्थू और उस जैसे अनजान लोग पछतावे की आग में जलते रहते हैं।

कांग्रेस कमिटी के बख्शीजी, मेहताजी, कश्मीरीलाल, जरनैल प्रभात - फेरियाँ निकालते, तामीरी काम भी करते, पर इन सबके आगे लाचार थे। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग अपनी अलग सत्ता, अलग राष्ट्र के लिए बेकरार थी। एक तरफ ये लोग आपस में लड़ रहे थे तो दूसरी तरफ वानप्रस्थीजी जैसे पाखंडी शान्ति प्रसारक और देवव्रत जैसे मास्टर भी थे जो रणबीर जैसे किशोरों और भोली-भाली जनता को धर्म व संस्कृति के नाम पर लाठी- भाले आदि देकर, उनमे घृणा का बीज बोकर उन्हें गुमराह किये जा रहे थे। इतिहास इस बात का गवाह है कि जिहादी अफवाहें सबसे ज्यादा तेज़ भागती हैं, रोकी नहीं जा सकतीं और जन-मानस में दंगा करना शुरू कर देती हैं यही हुआ भी। इसलिए सांगत में चर्चा के दौरान एक युवक समझाता है सबको, "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम लोगों को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है, और मुसलमानों को हमारे खिलाफ भड़काया जा रहा है। हम झूठी अफ़वाहें सुन – सुनकर एक – दूसरे के खिलाफ तैश में आ रहे हैं। हमें अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिये कि गाँव के मुसलमानों के साथ मेल-जोल बनाये रखें और हत्तुलवसा कोशिश करें कि गाँव में फिसाद न हो"।[3] लोगों में धार्मिक उन्माद होता है अपने लोगों के साथ हुई ज्यादतियों और दुर्व्यवहार के बारे में सुनकर। ऐसे ही एक अवसर पर सोहनसिंह भी सभी लोगों में गलतफहमी हो जाने पर उन्हें समझाते हैं, "आपको किसी ने गलत खबर दी है। खालसा स्कूल पर हमला ज़रूर हुआ था, लेकिन गाँव के मुसलामानों ने नहीं किया। ...चपरासी को केवल चोटें आई हैं, वह मरा नहीं है और उसकी बीवी को भी भगवा करके कोई नहीं ले गया। वह भी स्कूल में मौजूद है"।[4]

एक तरफ शाहनवाज़ हैं – अपनी नीली ब्यूक गाडी में लाला लक्ष्मीनारायण और अपने मित्र रघुनाथ के परिवारों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाता हुआ। वह जेवर तो अपनी हिन्दू भाभी तक पहुँचाकर इंसानियत की गवाही खड़ी कर देता है पर उसी इंसान में छिपी पाशविक हिंसा, वातावरण में मिले ज़हर के कारण मिल्खी जैसे वफादार नौकर की उन्माद की अवस्था में हत्या कर देने का कारण भी बन जाती है। ऐसे अनेक मानवीय अंतर्विरोध उपन्यास में उभरे हैं। दिखता तो यह भी है कि अमीर हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे का जान-माल, असबाब बचाते हैं और गरीबों को आपस में उलझाकर भिडवाते – मरवाते हैं। विस्तृत नरसंहार के बाद लूट-पाट, मार-काट, विस्थापन, बलात्कार – फिर चाहे वह एक मृत लड़की के साथ हो या जिंदा के साथ -भयावह दुःस्वप्न की तरह वातावरण को आच्छादित कर लेते हैं।

शहरों से चली यह आँधी गाँवों का रुख कर वहाँ भी तबाही का तांडव मचाती है। गाँव की कथा हरनामसिंह के परिवार से आगे बढ़ती है। कहीं स्त्रियाँ कुर्बानी के ज़ज्बे से भरी थीं, कुँए में कूदकर अपने आत्म - सम्मान की रक्षा कर रहीं थीं, तो कुछ ने हालात से समझौता कर लिया था। एक तरफ गुरुद्वारे में संगत हो रही थी, तो दूसरी तरफ असला जमा किया जा रहा था। विस्थापितों की पीड़ा के प्रतिनिधि हरनामसिंह व बंतो को एक तरफ करीम खान गाँव छोड़ने की सलाह देता है, तो एहसान अली

की बीवी राजो उन्हें अपने घर में पनाह देती है । वह उन्हें अपने घर की मियानी में छिपाती ही नहीं, अपितु विशेष पात्रों में उनके धर्म का ख्याल रखकर लस्सी भी पिलाती है । पति और बेटे को पता चल जाने पर उन्हें भगाने में सहायता भी करती है वह । एहसान अली को अपने घर का सामान लूट लाया देख हरनाम सिंह द्वारा उसे अपने ही संदूक की चाबियाँ दे देने की विवशता पाठक को झकझोर देती है । उसके बेटे इकबाल सिंह को ज़बरदस्ती मांस का टुकडा खिलाकर कलमा पढ़वाकर इक़बाल अहमद बनाए जाने पर धर्मान्धों की क्रूर विद्रूप हंसी मारक लगती है । यूँ हिन्दू-मुसलमान साथ-साथ रहते हैं, काम करते हैं । सभी अपने यार - दोस्तों के बीच सुरक्षित रहना चाहते हैं पर ऐसा हो नहीं पाता । अकारण मार दिए जाने वाले गरीबों की सूची लम्बी है । कर्फ्यू के समय अकेले बच्चे की चिंता कर रहे इत्रफ़रोश का उसी बच्चे द्वारा निर्ममतापूर्वक मार दिया जाना अविश्वसनीय है, रोंगटे खड़े कर देता है । "इत्रफ़रोश कमर में लगे ज़ख्म से इतना नहीं मर रहा था, जितना त्रास और भय से, और भोले बालक द्वारा किये गए हमले से ।"[5]

उपन्यास के अंत में लेखक शहर लौट आता है व फसादों के बाद के निराशाजनक, नकारात्मक, अवसादमय हालात बयान करते हुए पाठकों की अन्तश्चेतना को सोचने-समझने के लिए विवश करता है । खोये सामान को, गहनों को - फिर चाहे वह पत्नी की लाश पर ही क्यों न हों – पाने की कोशिश जारी है । पर भगा ली गयी, आबरू लूटी गयी, विवशता में इस्लाम या मुसलमान मर्द कबूल कर लेनेवाली औरतें-बेटियाँ मिलें भी, पहचानी भी जाएं तो परिवार में उनके लिए कोई जगह नहीं । गहनों की - सामान की कीमत तो है । बेवजह की सजा भुगत रहीं बहू-बेटियों की नहीं । उनकी तार-तार हो चुकी जिंदगी को फिर से सिलने की कोशिश कहीं नहीं करता कोई ।

सबकुछ ख़त्म होने के बाद नाटक शुरू होता है -अफसर के दौरों का, हवाई-यात्राओं का, अमन कमिटियाँ और रिलीफ कमिटियाँ बनाने का । इनमें वही लोग शामिल हैं, जो अमन या सहायता की कोशिश के अलावा सबकुछ करते हैं । इन समितियों में शामिल होने के लिए छींटाकशी भी है, सौदे भी, झगड़े भी, गाली-गलौज भी, और जोड़-तोड़ भी । रिलीफ वर्क से उनका जुड़ाव कुछ कमाने या समाज-सेवा का ढोंग करने भर को है । रिलीफ-दफ्तर में घूमते -भटकते हर व्यक्ति का अपना विशिष्ट, निराशाजनक अनुभव है, कोई नहीं जानता कि क्या होगा, किधर जाना है, क्या करना है । प्रशासन का जवाब वही है जो रिचर्ड का है । सरकारी मुलाजिम को किसी के सुख-दुख से कोई मतलब नहीं, काम है केवल आंकड़ों से । "हमें आँकड़े चाहिए, केवल आँकड़े ! आप समझते क्यों नहीं ? आप लम्बी हाँकने लगते हैं, साडी रामकहानी सुनाने लगते हैं, मुझे रामकहानी नहीं चाहिए, मुझे केवल आँकड़े चाहिए। कितने मरे, कितने घायल हुए, कितना माली नुक्सान हुआ ।"[6]

प्रशासन को चाहिए आँकड़े ताकि उनका धर्म पूछ कर, धार्मिक आधार पर राजनीतिक वक्तव्य देकर, अपनी जगह और महत्त्व पुख्ता कर ली जाय । दिखावे के लिए कुछ अफसर भी ज़रूरत पड़ने पर ट्रांसफर कर दिए जाएँ । पाँच दिन के फिसाद में मरनेवालों की तादाद गिनती से बाहर है, पर इसमें मुराद अली, धर्मदेव, लक्ष्मीनारायण, शाहनवाज़ जैसे लोग नहीं मरते । मरते हैं आज़ादी व एकता के लिए जोश व ईमानदारी से लड़नेवाले जरनैलसिंह, टीले पर काम करनेवाले मजदूर, नुक्कड़ पर रहनेवाले लुहार करीमबख्श, रखवाली करनेवाले वफादार मिल्खो, गली-गली आवाज़ लगाकर सामान बेचनेवाले इत्रफ़रोश । ये ऐसे लोग हैं जिनके लिए धर्म और संस्कृति से ज्यादा ज़रूरी मसले हैं भूख व रोज़मर्रा की ज़रूरतें, जिनके कारण वे ऐसे वातावरण में भी काम करने, बाहर निकलने को विवश हैं । "पन्नों पर एक खाना और जोड़ दो । गरीब कितने मरे । " ... इसमें क्या तुक है ? तुम हर बात में अमीर – गरीब को घसीट लाते हो । " ...यह भी एक फ्लू है आँकड़े इकट्ठे करने का । दोनों ओर के गरीब कितने मरे । अमीर कितने मरे । इससे भी तुम्हें कई बातों का पता चलेगा ।"[7]

पंजाब के एक शहर, उसके अंदरूनी भागों-कस्बों और गाँवों की आकर्षक सरल व सादगीपूर्ण सजीव तस्वीर को वर्णन बहुलता से प्रस्तुत करते हुए लेखकने परिवेशगत स्थितियों और मानसिकता का चित्र भी उपस्थित किया है । 'तमस' टूटकर, बिखर कर, बर्बाद होकर आज़ाद होते भारत का एक ऐसा उपन्यास है जो कई सवाल उठाता है – इन सब स्थितियों के लिए जिम्मेदार कौन है ? वह साम्प्रदायिकता की आग से बचने के लिए आगाह करते हुए उस अंधकारमय भविष्य की ओर जाने से रोकता है जिसमें हमें स्वार्थपरता व धर्मांधता धकेलती है । यह पंजाब का विभाजन है या पूरे देश का ? क्या केवल अँगरेज़ इसके लिए ज़िम्मेदार थे ? अमरकांत ने कहा है, "साम्प्रदायिकता जैसे नाज़ुक विषय पर सही दृष्टि से लिखने के लिए जिस अपरिसीम धैर्य की ज़रूरत है, उसका आभास इस रचना 'तामस' को पढ़ कर ही हो सकता है ... भीष्म सहनी इस रचना में एक अद्भुत शिल्पी के रूप में उभर कर आये हैं ।"[8]

आम जनता शांति चाहती है पर दंगा होता नहीं करवाया जाता है, तनाव होता नहीं बल्कि पैदा किया जाता है । तर्क-वितर्क को कुचला जाता है । सामने आते हैं सामान्य - जन या एक भीड़ जिसकी अलग अंध मानसिकता होती है और दंगे करवाने वाले सामने नहीं, परदे के पीछे रहते हैं । ये हैं सत्ता-संघर्ष व सत्ता-नियंत्रण के प्रयासों में लगे वे राजनीतिज्ञ जो सांप्रदायिक उन्माद को भड़काकर अपना हित साधते हैं । 'तमस' में शैतानियत का ऐसा प्रतिनिधि कुटिल सत्ताधीश अँगरेज़ है ...फिसाद करनेवाला भी, रोकनेवाला भी । कई लोग इस बात को जानते – समझते हैं, यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी उसे कहती है, "बहुत चालाक नहीं बनो, रिचर्ड । मैं सब जानती हूँ । देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो । क्यों, ठीक है ना ?"[9]

जो उस समय अंग्रेज करते थे आज उसका स्थान भारतीय नेताओं ने ले लिया है । इसीलिए अब तक अनेक बार दंगे हुए । हिन्दू-सिख दंगे, बाबरी-अयोध्या मसले पर दंगे, गोधरा का नर - संहार, मेरठ, भिवंडी, मुंबई, मालेगांव ... वह कौन-सी जगह है जिसका इस्तेमाल सत्तारूढ़ होने, वर्चस्व -प्रदर्शन के लिए भयंकर ढ़ंग से स्वार्थी, सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों ने नहीं किया । ईसाई मिशनरी जलाए जाने लगे हैं, कश्मीरी पंडित घाटी से बाहर खदेड़ दिए गए हैं । इस तरह धर्म का उपयोग स्वार्थों के लिए करने का कुचक्र आगे बढ़ता जा रहा है । नफरत, हैवानियत, सियासत से भरे इस युग में अपने दायित्वों को नज़रंदाज़ करना मूर्खतापूर्ण है । सामान्य मनुष्यता जो पिट रही है, इस्तेमाल हो रही है, बर्बाद हो रही है – उस ज्योति को बचाना है क्योंकि रौशनी की, ज्योति की एकमात्र बची हुई किरण है मानवता । छल – छद्मों, राजनीति की सड़ांधों, मौकापरस्ती, जद्दोजहद, वर्ग-संघर्ष, रुग्ण मानसिकता के तमस में ज्योति की छोटी-छोटी किरणें जो जरनैल, राजो, मीरदाद आदि की शक्ल में हैं उन्हें बचाना है हम सभी को । हम जो कि एकता का नाटक करते हैं, पर कम या ज्यादा मात्रा में ही सही फिरकापरस्ती, कट्टरता व धर्मान्धता के लिए उतने ही ज़िम्मेदार हैं । तमस के अन्धकार में खोई आँखें बंद होती हैं, चेतना को झकझोरती हैं, आँखें खुलती हैं तो पता चलता है यह अँधेरा अनगिन तरह से हमें लील रहा है । यह अँधेरा आपसी अविश्वास, अलगाव, नफरत व अपरिचय का है, यह अँधेरा राजनेताओं - धर्माचार्यों की उस टुच्ची मानसिकता का भी है जो देशभक्ति, राष्ट्रवाद, धर्म, संस्कृति इन अलग-अलग नामों से जनता को उन्माद की जघन्य खाई में गिराते हैं । किसी भी हद तक जाकर वे अपने अंधेरों से मानवीयता को लील लेते हैं । यह अँधेरा दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है । तब से अब तक नारों की शक्ल बदलती रही है ... 'अंग्रेजो भारत छोडो', 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई, सिक्खों की अब करो सफाई', 'हिंदी, हिन्दू, हिन्दुस्तान – न रहे सिख, न मुसलमान', करते - करते अब बात आ पहुँची है 'एक बिहारी, सौ बीमारी' तक ...कहाँ तक जाएगा यह सब ? यह सोचना बहुत ज़रूरी हो गया है अब ।

पुराने समय में महामारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप आदि सामाजिक स्थिरता को भंग किया करते थे, आज ये काम साम्प्रदायिकता व आण्विक हथियार की होड़ से होता है । हम सब लड़ रहे हैं, एक - दूसरे से गले मिलना चाहते हुए भी । क्यों... पता नहीं ... हिन्दू-मुस्लिम से आरम्भ हुई साम्प्रदायिकता सिख, इसाई, जैन, बौद्ध से बढ़ते हुए जातीयता व क्षेत्रीयता की सीमाओं तक जा पहुंची है । सब शक्ति-प्रदर्शन में व्यस्त हैं । अपने प्रभाव से, अखाड़ों से, जातीय आधार पर बनाए गए स्कूल-कॉलेज, अस्पतालों-धर्मशालाओं से, जुलूसों में संख्या-प्रदर्शन से ? कहाँ जाकर, कब जाकर रुकेगा यह सब ? हमारे घर भी अब शस्त्रागार बन गए हैं । मासूम बच्चों-नौजवानों को हथियारों से लैस कर संघ, जिहाद या किसी और संगठन के नाम पर शिक्षित किया जा रहा है । जीवन को, संवेदनशीलता को तहस-नहस कर ऐसे चक्कर में फँसाया जा

रहा है कि हम साम्प्रदायिकता का हल सांप्रदायिक नज़रिए से खोजने लगे हैं। यह भूत, मेरे सूअर के रूप में तब तक जीवित ही रहेगा, जब तक सांप्रदायिक मानसिकता के मुक्ति नहीं होगी। साम्प्रदायिकता हमारे इशारों पर और हम सभ्यता का परचम लहराने वालों के इशारों पर कैसे नाचते हैं, यह 'तमस' में गहरी सूजबूझ से व्यक्त हुआ है।

किसी पार्टी के कोई उसूल हैं या नहीं, यह पूछना अब भी बेमानी लगता है क्योंकि 'अन्दर कुछ और बाहर कुछ और' की चारित्रिक विशिष्टता वाली पार्टियाँ आज भी सत्ता प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिकता के किसी भी संस्करण का इस्तेमाल करने में झिझकती या रुकती नहीं हैं। हमारी समानता के, सुख-सुविधा के लिए आवाज़ उठाने का दम भरनेवाले, जातिगत, धर्मगत, क्षेत्रगत आधार पर लड़नेवाले दुनियाभर के लुच्चे-लफंगे, अवसरवादी, विचारहीन नेतृत्व के लोग आज मूर्धन्य नेता बन विधानसभाओं और संसदों में आ बैठे हैं और हम जैसी भोली-भाली जनता इसी से खुश है कि चलो, भला आदमी न हुआ तो क्या ? हमारी जाति-धर्म का तो है। इस तरह आज हमारा प्रजातंत्र जातिवादी सरगनाओं के समीकरणों का अखाडा बनता जा रहा है। उनकी रूचि अपनी उन्नति की तरफ है। रिचर्ड की तरह जनता को एकता में रखने की अपेक्षा, वैमनस्य पैदा करने, उलझाने परन्तु सुलझाने का दिखावा करने में अधिक है। रिचर्ड अपनी बीबी को समझाता है, "डार्लिंग, हुकूमत करनेवाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन-सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक - दूसरे से अलग हैं।"[10]

जितना हम शिक्षित हो प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं, साम्प्रदायिकता गायब होने की बजाय अनेक छद्म वेशों में हमारी ओर भागती-बढ़ती चली आ रही है। जान - बूझकर भ्रम व विद्वेष फैलाए जा रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का प्रयोग खुले आम एक इन्सान को दूसरे इंसान से लड़वाने के लिए करते हुए, अमानवीय क्रूरताओं व शोषण के पदचिन्ह निर्मित हो रहे हैं। अतः 'तमस' की अर्थवत्ता आज भी पहले से कम नहीं हुई है। इसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। तिस पर कल तक जो विदेशी कम्पनियाँ देश की आज़ादी की दुश्मन थीं आज हम उनका दामन थामे, झोली फैलाए, बाँह पसारकर उन्हें, उनसे उपजती पूँजीवादी व्यवस्था को बढ़ावा दे रहे हैं।

यह समय है पुनर्विचार का, पुनर्निर्माण का, नए सिरे से सोचने का। 'तम' का अर्थ है 'अन्धकार', राहु, पाप, वाराह (सूअर), पाप, क्रोध, अज्ञान, कालिख, कालिमा, नरक, मोह, और सांख्य में प्रकृति का तीसरा गुण जिससे काम, क्रोध और हिंसा आदि उत्पन्न होते हैं। उपन्यास 'तमस' में ये सारे अर्थ सक्रिय हैं। इस तमस को पहचानना आसान नहीं। उससे बाहर निकलना मुश्किल भी है, पर हमारी सभ्यता ने समय-समय पर अनेक मुश्किलों का सामना किया है, इसका भी करेगी। दूसरों द्वारा बताये रास्ते पर चलकर इससे निकलना संभव नहीं। इस संघर्ष का रास्ता आसान भी नहीं। उपनिवेशवाद यदि एक अन्धेरा है तो जनवादी चेतना दीये की ज्योति है। वह ज्योति जो बाहरी हवा के झोंके से झपकती है। यह झपकना, जूझना, तमस से मुक्ति के लिए बहुत ज़रूरी है। रचनाकार भीष्म साहनी हमें समझाना चाहते हैं कि सलोत्तरी साहब जैसे निजीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद के तत्व जो हमारे बीच में अनुपस्थित होकर भी उपस्थित हैं, उनसे हम सावधान हों। उन्माद के समय कमज़ोर पड़ने की बजाय विवेक की शक्ति को बनाए रखें। लेखक का उद्देश्य है कि जाति-धर्म, संस्कृति-परंपरा, या इतिहास के नाम पर की जाने वाली राजनीती को हम समझ सकें। उनके कारण उपजे उन्माद से बचकर उन सांप्रदायिक ताकतों को ठीक से पहचान लें, लड़ानेवाली कट्टरता को जान लें, और सामझ लें कि अंधविश्वास पर आधारित धर्म को आधार बनाकर चलाई जानेवाली राजनीति गलत है, वह हमारा फायदा उठाती है। एक कौम दूसरी कौम को रौंद सके, नकारात्मकता पैदा हो – यह भयावह षड्यंत्र है। हम 'तमस' के आइने में देखें कि सुअर व गाय या किसी और के नाम पर, लहूलुहान भाई - चारा, भीड़ का जुनून, ख़त्म होता स्नेह-सौहार्द्र कैसे रक्तबीज पैदा करता है। हमें समझना होगा कि सुअर या गाय का बदला हम मनुष्यों को मार कर कैसे ले सकते हैं ? क्या हम यूँ ही मरते – मारते, लाशें गिनते, मुर्दों को जलाते-दफनाते रहेंगे या साम्प्रदायिकता और आतंकवाद से बचने का उपाय खोजेंगे। और नत्थू की तरह चालाक शक्तियों के माहिर हाथों का खिलौना या उनके हाथों की कठपुतली बनाए जाने से बचेंगे। हम निर्णय करें कि सबसे मिलकर रहें, प्रेम-सौहार्द्र से मानवीय मूल्यों का विकास व रक्षा करें।

'तमस' धारावाहिक के निर्दशक गोविन्द निहलानी ने कहा है "तमस का सन्देश यही है कि लोग भावनात्मक स्तर पर न बहें, तथ्यों की तह तक जाएँ, समाज में अलगाव फैलानेवाले लोगों को चुनौती देने का सामूहिक प्रयास करें। सभी धर्मों में ऐसे लोग, तत्व मौजूद हैं जो राजनीतिक कारणों से विघटनकारी प्रयासों में लगे रहते हैं। उन्हें पहचानने और जनता के विवेक को विकसित करने की ज़रूरत है। 'तमस' में वहशत के अन्धकार के बीच से वैचारिकता की रौशनी दिखानेवाली यही तस्वीरें हैं, लकीरें हैं।"[11]

सचमुच सारे अँधेरे के बावजूद जो कुछ थोड़ी सी भी ज्योति है वह ज़मीर को, विश्वास को, इंसानियत को तमाम चुनौतियों के बीच भी बचाए हुए है। यह ज्योति आदमियत का इस अंधेरे में वह सहारा है, जो अँधेरे की मोटी से मोटी परतों को चीरने की क्षमता रखती है, जो साम्प्रदायिक पागलपन के बीच भी अपने विवेक को जगाना चाहती है। आपके अंतस के अँधेरे से आपका साक्षात्कार कराना चाहती है। जब तक धर्म, जाति, देश व घृणा का अन्धकार रहेगा, तमस रहेगा – अन्दर भी और बाहर भी। दीये की इस मद्धिम किन्तु प्रभावी लौ को बचाने के लिए अपनी अंतिम साँसों तक लड़ते रहना है, प्रयत्नशील रहना है। यह अन्धकार की कथा से ज्योति की ओर, असत से सत की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने का प्रयास है, कुछ-कुछ वैसा ही जैसा 'अँधा युग' में है – अंधों के माध्यम से ज्योति की कथा कहने का।

सन्दर्भ – सूची

1. तमस : एक पुनर्पाठ, संपा . विनोद शाही (भूमिका) पृ . सं. 15।
2. तमस, भीष्म साहनी, पृ . सं. 7।
3. वही, पृ . सं. 179।
4. वही, पृ . सं. 181।
5. वही, पृ . सं. 154।
6. वही, पृ . सं. 234।
7. वही, पृ . सं. 240 – 241।
8. भीष्म साहनी : रचना और व्यक्ति, अमरकांत, पृ . सं. 246।
9. वही, पृ . सं. 45।
10. वही, पृ . सं. 45।
11. तमस : एक पुनर्पाठ, संपा . विनोद शाही (गोविन्द निहलानी से हरि मृदुल की बातचीत.), पृ . सं. 231 – 232।